मानव वहाँ दस रात निवास करते हैं, उन्हें पुण्यात्मा जानना चाहिये। जो वहाँ मांस खाते और शराब पीते हैं, वे अधर्मके मूर्तिमान् स्वरूप और महापापी हैं। भगवान् नृसिंहके नामसे प्रसिद्ध एक ही तीर्थ है, जो बहुत ही उत्तम और विस्तृत है। उसका श्रवण करनेमात्रसे मनुष्य तत्काल पापमुक्त हो जाता है।

★

श्रीमद्भगवद्गीताके पहले अध्यायका माहात्म्य

श्रीपार्वतीने कहा—भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता हैं। आपकी कृपासे मुझे श्रीविष्णु-सम्बन्धी नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले, जो समस्त लोकका उद्धार करनेवाले हैं। देवेश! अब मैं गीताका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ। जिसका श्रवण करनेसे श्रीहरिमें भक्ति बढ़ती है।

श्रीमहादेवजी बोले—जिनका श्रीविग्रह अलसीके फूलकी भाँति श्यामवर्णका है, पक्षिराज गरुड़ ही जिनके वाहन हैं, जो अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते तथा शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, उन भगवान् महाविष्णुकी हम उपासना करते हैं। एक समयकी बात है, मुर दैत्यके नाशक भगवान् विष्णु शेषनागके रमणीय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान थे। उस समय समस्त लोकोंको आनन्द देनेवाली भगवती लक्ष्मीने आदरपूर्वक प्रश्न किया।

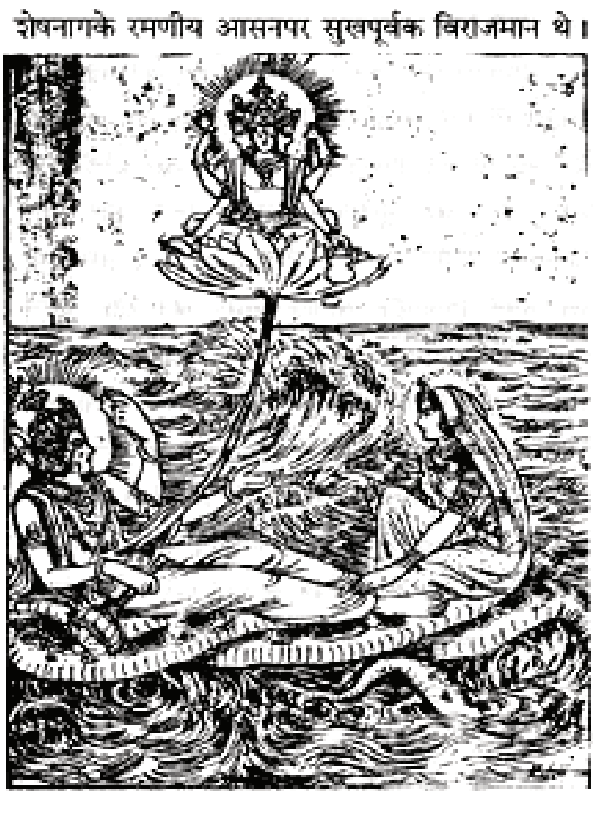

श्रीलक्ष्मीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हुए भी अपने ऐश्वर्यके प्रति उदासीनसे होकर जो इस क्षीरसागरमें नींद ले रहे हैं, इसका क्या कारण है?

श्रीभगवान् बोले—सुमुखि! मैं नींद नहीं लेता हूँ, अपितु तत्त्वका अनुसरण करनेवाली अन्तर्दृष्टिके द्वारा अपने ही माहेश्वर तेजका साक्षात्कार कर रहा हूँ। देवि! यह वही तेज है, जिसका योगी पुरुष कुशाग्र बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें दर्शन करते हैं तथा जिसे मीमांसक विद्वान् वेदोंका सार-तत्त्व निश्चित करते हैं। वह माहेश्वर तेज एक, अजर, प्रकाशस्वरूप, आत्मरूप, रोग-शोकसे रहित, अखण्ड आनन्दका पुञ्ज, निष्पन्द (निरीह) तथा द्वैतरहित है। इस जगत्का जीवन उसीके अधीन है। मैं उसीका अनुभव करता हूँ। देवेश्वरि! यही कारण है कि मैं तुम्हें नींद लेता-सा प्रतीत हो रहा हूँ।

श्रीलक्ष्मीने कहा—हृषीकेश! आप ही योगी पुरुषोंके ध्येय हैं। आपके अतिरिक्त भी कोई ध्यान करनेयोग्य तत्त्व है, यह जानकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयं आप ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें होकर भी यदि आप उस परम तत्त्वसे भिन्न हैं, तो मुझे उसका बोध कराइये।

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! आत्माका स्वरूप द्वैत और अद्वैतसे पृथक्, भाव और अभावसे मुक्त तथा आदि और अन्तसे रहित है। शुद्ध ज्ञानके प्रकाशसे उपलब्ध होनेवाला तथा परमानन्दस्वरूप होनेके कारण एकमात्र सुन्दर है। यही मेरा ईश्वरीय रूप है। आत्माका एकत्व ही सबके द्वारा जाननेयोग्य है। गीताशास्त्रमें इसीका प्रतिपादन हुआ है।

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर लक्ष्मीदेवीने शङ्का उपस्थित करते हुए कहा—'भगवन्! यदि आपका स्वरूप स्वयं परमानन्दमय और मन-वाणीकी पहुँचके बाहर है तो गीता कैसे उसका बोध कराती है? मेरे इस सन्देहका आप निवारण कीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—सुन्दरि! सुनो, मैं गीतामें अपनी स्थितिका वर्णन करता हूँ। क्रमशः पाँच अध्यायोंको तुम पाँच मुख जानो, दस अध्यायोंको दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्यायको उदर और दो अध्यायोंको दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार यह अठारह अध्यायोंकी वाङ्मयी ईश्वरीय मूर्ति ही समझनी चाहिये।* यह ज्ञानमात्रसे ही महान् पातकोंका नाश करनेवाली है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गीताके एक या आधे अध्यायका अथवा एक, आधे या चौथाई श्लोकका भी प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सुशर्माके समान मुक्त हो जाता है।

श्रीलक्ष्मीजीने पूछा—देव! सुशर्मा कौन था? किस जातिका था? और किस कारणसे उसकी मुक्ति हुई?

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! सुशर्मा बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। पापियोंका तो वह शिरोमणि ही था। उसका जन्म वैदिक ज्ञानसे शून्य एवं क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके कुलमें हुआ था। वह न ध्यान करता था न जप; न होम करता था न अतिथियोंका सत्कार। वह लम्पट होनेके कारण सदा विषयोंके सेवनमें ही आसक्त रहता था। हल जोतता और पत्ते बेंचकर जीविका चलाता था। उसे मदिरा पीनेका व्यसन था तथा वह मांस भी खाया करता था। इस प्रकार उसने अपने जीवनका दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। एक दिन मूढ़बुद्धि सुशर्मा पत्ते लानेके लिये किसी ऋषिकी वाटिकामें घूम रहा था। इसी बीचमें कालरूपधारी काले साँपने उसे डँस लिया। सुशर्माकी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर वह अनेक नरकोंमें जा वहाँकी यातनाएँ भोगकर मर्त्यलोकमें लौट आया और यहाँ बोझ ढोनेवाला बैल हुआ। उस समय किसी पङ्गुने अपने जीवनको आरामसे व्यतीत करनेके लिये उसे खरीद लिया। बैलने अपनी पीठपर पङ्गुका भार ढोते हुए बड़े कष्टसे सात-आठ वर्ष बिताये। एक दिन पङ्गुने किसी ऊँचे स्थानपर बहुत देरतक बड़ी तेजीके साथ उस बैलको घुमाया। इससे वह थककर बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। उस समय वहाँ कुतूहलवश आकृष्ट हो बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उस जनसमुदायमेंसे किसी पुण्यात्मा व्यक्तिने उस बैलका कल्याण करनेके लिये उसे अपना पुण्य दान किया। तत्पश्चात् कुछ दूसरे लोगोंने भी अपने-अपने पुण्योंको याद करके उन्हें उसके लिये दान किया। उस भीड़में एक वेश्या भी खड़ी थी। उसे अपने पुण्यका पता नहीं था, तो भी उसने लोगोंकी देखा-देखी उस बैलके लिये कुछ त्याग किया।

तदनन्तर यमराजके दूत उस मरे हुए प्राणीको पहले यमपुरी ले गये। वहाँ यह विचारकर कि यह वेश्याके दिये हुए पुण्यसे पुण्यवान् हो गया है, उसे छोड़ दिया गया। फिर वह भूलोकमें आकर उत्तम कुल और शीलवाले ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न हुआ। उस समय भी उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। बहुत दिनोंके बाद अपने अज्ञानको दूर करनेवाले कल्याण-तत्त्वका जिज्ञासु होकर वह उस वेश्याके पास गया और उसके दानकी बात बतलाते हुए उसने पूछा—'तुमने कौन-सा पुण्य दान किया था?' वेश्याने उत्तर दिया—'वह पिंजरेमें बैठा हुआ तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता है। उससे मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया है। उसीका पुण्य मैंने तुम्हारे लिये दान किया था।' इसके बाद उन दोनोंने तोतेसे पूछा। तब उस तोतेने अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके प्राचीन इतिहास कहना आरम्भ किया।

---

* शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि गीतासु स्थितिमात्मनः। वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात्॥
दशाध्याया-भुजाश्चैकमुदरं द्वौ पदाम्बुजे। एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी॥ (१७१। २७-२८)

शुक बोला—पूर्वजन्ममें मैं विद्वान् होकर भी विद्वत्ताके अभिमानसे मोहित रहता था। मेरा राग-द्वेष इतना बढ़ गया था कि मैं गुणवान् विद्वानोंके प्रति भी ईर्ष्या-भाव रखने लगा। फिर समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और मैं अनेकों घृणित लोकोंमें भटकता फिरा। उसके बाद इस लोकमें आया। सद्गुरुकी अत्यन्त निन्दा करनेके कारण तोतेके कुलमें मेरा जन्म हुआ। पापी होनेके कारण छोटी अवस्थामें ही मेरा माता-पितासे वियोग हो गया। एक दिन मैं ग्रीष्म ऋतुमें तपे हुए मार्गपर पड़ा था। वहाँसे कुछ श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और महात्माओंके आश्रयमें आश्रमके भीतर एक पिंजरेमें उन्होंने मुझे डाल दिया। वहीं मुझे पढ़ाया गया। ऋषियोंके बालक बड़े आदरके साथ गीताके प्रथम अध्यायकी आवृत्ति करते थे। उन्हींसे सुनकर मैं भी बारम्बार पाठ करने लगा। इसी बीचमें एक चोरी करनेवाले बहेलियेने मुझे वहाँसे चुरा लिया। तत्पश्चात् इस देवीने मुझे खरीद लिया। यही मेरा वृत्तान्त है, जिसे मैंने आपलोगोंसे बता दिया। पूर्वकालमें मैंने इस प्रथम अध्यायका अभ्यास किया था, जिससे मैंने अपने पापको दूर किया है। फिर उसीसे इस वेश्याका भी अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और उसीके पुण्यसे ये द्विजश्रेष्ठ सुशर्मा भी पापमुक्त हुए हैं।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप और गीताके प्रथम अध्यायके माहात्म्यकी प्रशंसा करके वे तीनों निरन्तर अपने-अपने घरपर गीताका अभ्यास करने लगे। फिर ज्ञान प्राप्त करके वे मुक्त हो गये। इसलिये जो गीताके प्रथम अध्यायको पढ़ता, सुनता तथा अभ्यास करता है, उसे इस भवसागरको पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

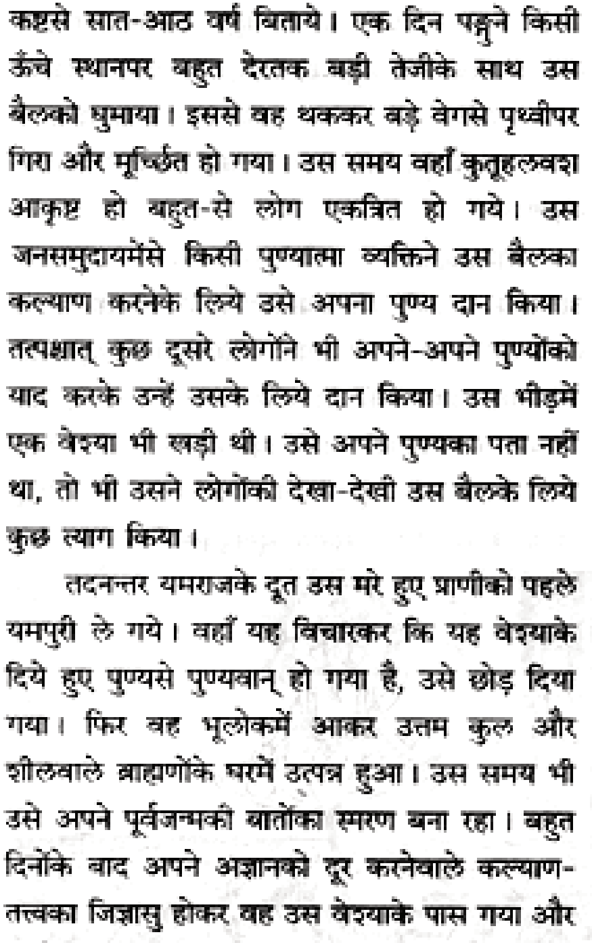

★

श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—लक्ष्मी! प्रथम अध्यायके माहात्म्यका उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अन्य अध्यायोंके माहात्म्य श्रवण करो। दक्षिण-दिशामें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पुरन्दरपुर नामक नगरमें श्रीमान् देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अतिथियोंके पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रोंके विशेषज्ञ, यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और तपस्वियोंके सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्योंके द्वारा अग्निमें हवन करके दीर्घकालतक देवताओंको तृप्त किया, किन्तु उन धर्मात्मा ब्राह्मणको कभी सदा रहनेवाली शान्ति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियोंके द्वारा सत्य-सङ्कल्पवाले तपस्वियोंकी सेवा करने लगे। इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया। तदनन्तर एक दिन पृथ्वीपर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए। वे पूर्ण अनुभवी, आकाङ्क्षारहित, नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेवाले तथा शान्तचित्त थे। निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें संलग्न हो वे सदा आनन्दविभोर रहते थे। देवशर्माने उन नित्यसन्तुष्ट तपस्वीको शुद्धभावसे प्रणाम किया और पूछा—'महात्मन्! मुझे शान्तिमयी स्थिति कैसे प्राप्त होगी?' तब उन आत्मज्ञानी संतने देवशर्माको सौपुर ग्रामके निवासी मित्रवान्का, जो बकरियोंका चरवाहा था, परिचय दिया और कहा 'वही तुम्हें उपदेश देगा।'

यह सुनकर देवशर्माने महात्माके चरणोंकी वन्दना की और समृद्धिशाली सौपुर ग्राममें पहुँचकर उसके उत्तरभागमें एक विशाल वन देखा। उसी वनमें नदीके किनारे एक शिलापर मित्रवान् बैठा था। उसके नेत्र आनन्दातिरेकसे निश्चल हो रहे थे—वह अपलक दृष्टिसे देख रहा था। वह स्थान आपसका स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्पर-विरोधी जन्तुओंसे घिरा था। वहाँ उद्यानमें मन्द-मन्द वायु चल रही थी। मृगोंके झुंड शान्तभावसे बैठे थे और मित्रवान् दयासे भरी हुई आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टिसे पृथ्वीपर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूपमें उसे देखकर देवशर्माका मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़ी विनयके साथ मित्रवान्के पास गये। मित्रवान्ने भी अपने मस्तकको किञ्चित् नवाकर देवशर्माका सत्कार किया। तदनन्तर विद्वान् देवशर्मा अनन्य चित्तसे मित्रवान्के समीप गये और जब उसके ध्यानका समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मनकी बात पूछी—'महाभाग! मैं आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथकी पूर्तिके लिये मुझे किसी ऐसे उपायका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।'

देवशर्माकी बात सुनकर मित्रवान्ने एक क्षणतक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा—'विद्वन्! एक समयकी बात है, मैं वनके भीतर बकरियोंकी रक्षा कर रहा था। इतनेमें ही एक भयङ्कर व्याघ्रपर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता था। मैं मृत्युसे डरता था, इसलिये व्याघ्रको आते देख बकरियोंके झुंडको आगे करके वहाँसे भाग चला; किन्तु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदीके किनारे उस व्याघ्रके पास बेरोक-टोक चली गयी। फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्थामें देखकर बकरी बोली—'व्याघ्र! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीरसे मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न। तुम इतनी देरसे खड़े क्यों हो? तुम्हारे मनमें मुझे खानेका विचार क्यों नहीं हो रहा है?'

व्याघ्र बोला—बकरी! इस स्थानपर आते ही मेरे मनसे द्वेषका भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिये पास आनेपर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्रके यों कहनेपर बकरी बोली—'न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।' यह सुनकर व्याघ्रने कहा—'मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुषसे पूछें।' ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँसे चल दिये। उन दोनोंके स्वभावमें यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मयमें पड़ा था। इतनेमें ही उन्होंने मुझीसे आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्षकी शाखापर एक वानरराज था। उन दोनोंके साथ मैंने भी वानरराजसे पूछा। विप्रवर! मेरे पूछनेपर वानरराजने आदरपूर्वक कहा—'अजापाल! सुनो, इस विषयमें मैं तुम्हें प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वनके भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ एक शिवलिङ्ग है। पूर्वकालमें यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान् महात्मा रहते थे, जो तपस्यामें संलग्न होकर इस मन्दिरमें उपासना करते थे। वे वनमेंसे फूलोंका संग्रह कर लाते और नदीके जलसे पूजनीय भगवान् शङ्करको स्नान कराकर उन्हींसे उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधनाका कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समयके बाद उनके समीप किसी अतिथिका आगमन हुआ। सुकर्माने भोजनके लिये फल लाकर अतिथिको अर्पण किया और कहा—'विद्वन्! मैं केवल तत्त्वज्ञानकी इच्छासे भगवान् शङ्करकी आराधना करता हूँ। आज इस आराधनाका फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया; क्योंकि इस समय आप-जैसे महापुरुषने मुझपर अनुग्रह किया है।'

सुकर्माके ये मधुर वचन सुनकर तपस्याके धनी महात्मा अतिथिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्डपर गीताका दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मणको उसके पाठ एवं अभ्यासके लिये आज्ञा देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-सम्बन्धी मनोरथ अपने-आप सफल हो जायगा।' यों कहकर वे बुद्धिमान् तपस्वी सुकर्माके सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेशके अनुसार निरन्तर गीताके द्वितीय अध्यायका अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँका तपोवन शान्त हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदिकी बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानोंमें भूख-प्यासका कष्ट भी जाता रहा तथा भयका सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्यायका जप करनेवाले सुकर्मा ब्राह्मणकी तपस्याका ही प्रभाव समझो।

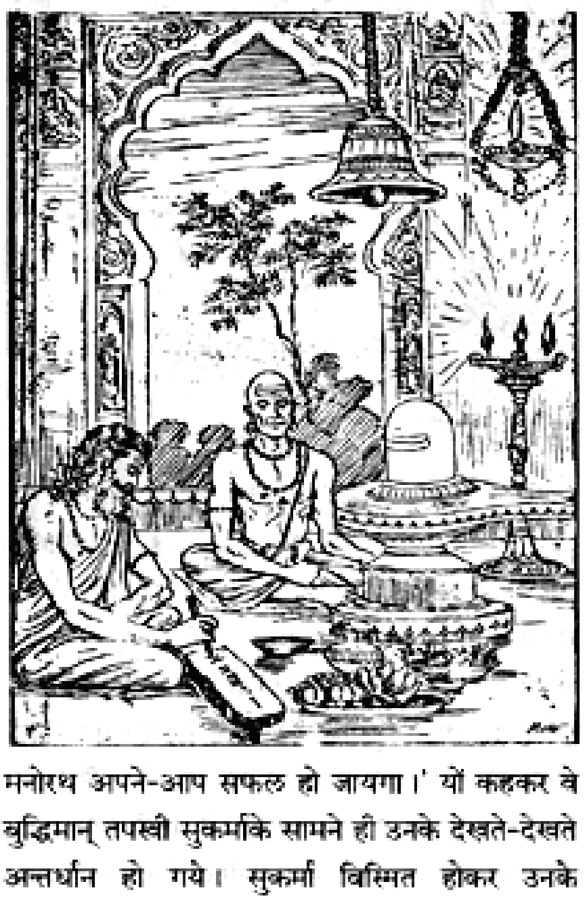

मित्रवान् कहता है—वानरराजके यों कहनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और व्याघ्रके साथ उस मन्दिरकी ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्डपर लिखे हुए गीताके द्वितीय अध्यायको मैंने देखा और पढ़ा। उसीकी आवृत्ति करनेसे मैंने तपस्याका पार पा लिया है, अतः भद्रपुरुष! तुम भी सदा द्वितीय अध्यायकी ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करनेपर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! मित्रवान्के इस प्रकार आदेश देनेपर देवशर्माने उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरन्दरपुरकी राह ली। वहाँ किसी देवालयमें पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्माको पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया और सबसे पहले उन्हींसे द्वितीय अध्यायको पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरणवाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धाके साथ द्वितीय अध्यायका पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसाके योग्य) परमपदको प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी! यह द्वितीय अध्यायका उपाख्यान कहा गया। अब तृतीय अध्यायका माहात्म्य बतलाऊँगा।

★

श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! जनस्थानमें एक जड नामक ब्राह्मण था, जो कौशिक-वंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने अपना जातीय धर्म छोड़कर बनियेकी वृत्तिमें मन लगाया। उसे परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेका व्यसन पड़ गया था। वह सदा जूआ खेलता, शराब पीता और शिकार खेलकर जीवोंकी हिंसा किया करता था। इसी प्रकार उसका समय बीतता था। धन नष्ट हो जानेपर वह व्यापारके लिये बहुत दूर उत्तर दिशामें चला गया। वहाँसे धन कमाकर घरकी ओर लौटा। बहुत दूरतकका रास्ता उसने तै कर लिया था। एक दिन सूर्यास्त हो जानेपर जब दसों दिशाओंमें अन्धकार फैल गया, तब एक वृक्षके नीचे उसे लुटेरोंने धर दबाया और शीघ्र ही उसके प्राण ले लिये। उसके धर्मका लोप हो गया था, इसलिये वह बड़ा भयानक प्रेत हुआ।

उसका पुत्र बड़ा धर्मात्मा और वेदोंका विद्वान् था। उसने अबतक पिताके लौट आनेकी राह देखी। जब वे नहीं आये, तब उनका पता लगानेके लिये वह स्वयं भी घर छोड़कर चल दिया। वह प्रतिदिन खोज करता, मगर राहगीरोंसे पूछनेपर भी उसे उनका कुछ समाचार नहीं मिलता था। तदनन्तर एक दिन एक मनुष्यसे उसकी भेंट हुई, जो उसके पिताका सहायक था। उससे सारा हाल जानकर उसने पिताकी मृत्युपर बहुत शोक किया। वह बड़ा बुद्धिमान् था। बहुत कुछ सोच-विचार कर पिताका पारलौकिक कर्म करनेकी इच्छासे आवश्यक सामग्री साथ ले उसने काशी जानेका विचार किया। मार्गमें सात-आठ मुकाम डालकर वह नवें दिन उसी वृक्षके नीचे पहुँचा, जहाँ उसके पिता मारे गये थे। उस स्थानपर उसने सन्ध्योपासना की और गीताके तीसरे अध्यायका पाठ किया। इसी समय आकाशमें बड़ी भयानक आवाज हुई। उसने अपने पिताको भयंकर आकारमें देखा; फिर तुरंत ही अपने सामने आकाशमें उसे एक सुन्दर विमान दिखायी दिया, जो महान् तेजसे व्याप्त था। उसमें अनेकों क्षुद्र घण्टिकाएँ लगी थीं। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। यह दृश्य देखकर उसके चित्तकी व्यग्रता दूर हो गयी। उसने विमानपर अपने पिताको दिव्यरूप धारण किये विराजमान देखा। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था और मुनिजन उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही पुत्रने प्रणाम किया। तब पिताने भी उसे आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् उसने पितासे यह सारा वृत्तान्त पूछा। उसके उत्तरमें पिताने सब बातें बताकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'बेटा! दैववश मेरे निकट गीताके तृतीय अध्यायका पाठ करके तुमने इस शरीरके द्वारा किये हुए दुस्त्यज कर्म-बन्धनसे मुझे छुड़ा दिया। अतः अब घर लौट जाओ; क्योंकि जिसके लिये तुम काशी जा रहे थे, वह प्रयोजन इस समय तृतीय अध्यायके पाठसे ही सिद्ध हो गया है।' पिताके यों कहनेपर पुत्रने पूछा—'तात! मेरे हितका उपदेश दीजिये तथा और कोई कार्य जो मेरे लिये करनेयोग्य हो बतलाइये।' तब पिताने उससे कहा—'अनघ! तुम्हें यही कार्य फिर करना है। मैंने जो कर्म किया है, वही मेरे भाईने भी किया था। इससे वे घोर नरकमें पड़े हैं। उनका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये तथा मेरे कुलके और भी जितने लोग नरकमें पड़े हैं, उन सबका भी तुम्हारे द्वारा उद्धार हो जाना चाहिये; यही मेरा मनोरथ है। बेटा! जिस साधनके द्वारा तुमने मुझे संकटसे छुड़ाया है। उसीका अनुष्ठान औरोंके लिये भी करना उचित है। उसका अनुष्ठान करके उससे होनेवाला पुण्य उन नारकी जीवोंको सङ्कल्प करके दे दो। इससे वे समस्त पूर्वज मेरी ही तरह यातनासे मुक्त हो स्वल्पकालमें ही श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त हो जायँगे।'

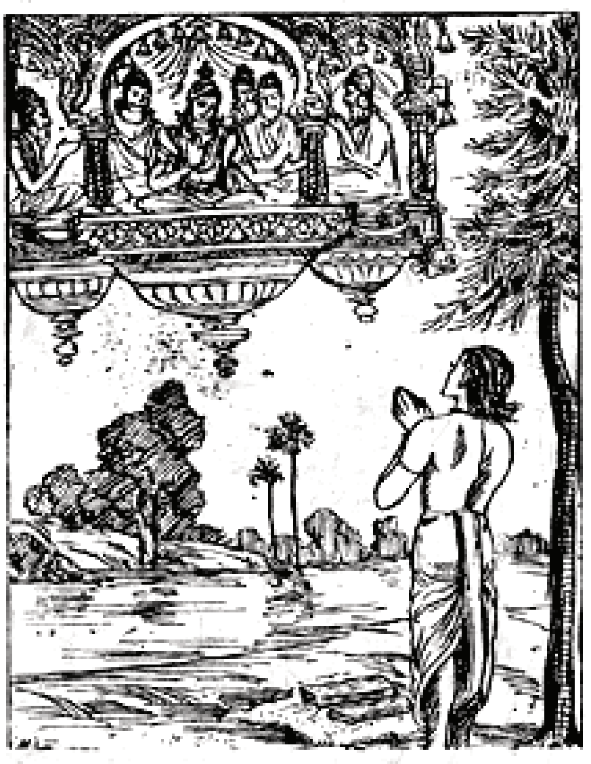

पिताका यह सन्देश सुनकर पुत्रने कहा—'तात! यदि ऐसी बात है और आपकी भी ऐसी ही रुचि है तो मैं समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार कर दूँगा।' यह सुनकर उसके पिता बोले—'बेटा! एवमस्तु, तुम्हारा कल्याण हो; मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो गया!' इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर उसके पिता भगवान् विष्णुके परमधामको चले गये। तत्पश्चात् वह भी लौटकर जनस्थानमें आया और परम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें उनके समक्ष बैठकर पिताके आदेशानुसार गीताके तीसरे अध्यायका पाठ करने लगा। उसने नारकी जीवोंका उद्धार करनेकी इच्छासे गीतापाठजनित सारा पुण्य सङ्कल्प करके दे दिया।

इसी बीचमें भगवान् विष्णुके दूत यातना भोगनेवाले नारकी जीवोंको छुड़ानेके लिये यमराजके पास गये। यमराजने नाना प्रकारके सत्कारोंसे उनका पूजन किया और कुशल पूछी। वे बोले—'धर्मराज! हमलोगोंके लिये सब ओर आनन्द-ही-आनन्द है।' इस प्रकार सत्कार करके पितृलोकके सम्राट् परम बुद्धिमान् यमने विष्णुदूतोंसे यमलोकमें आनेका कारण पूछा।

तब विष्णुदूतोंने कहा—यमराज! शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुने हमलोगोंको आपके पास कुछ सन्देश देनेके लिये भेजा है। भगवान् हमलोगोंके मुखसे आपकी कुशल पूछते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि 'आप नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंको छोड़ दें।'

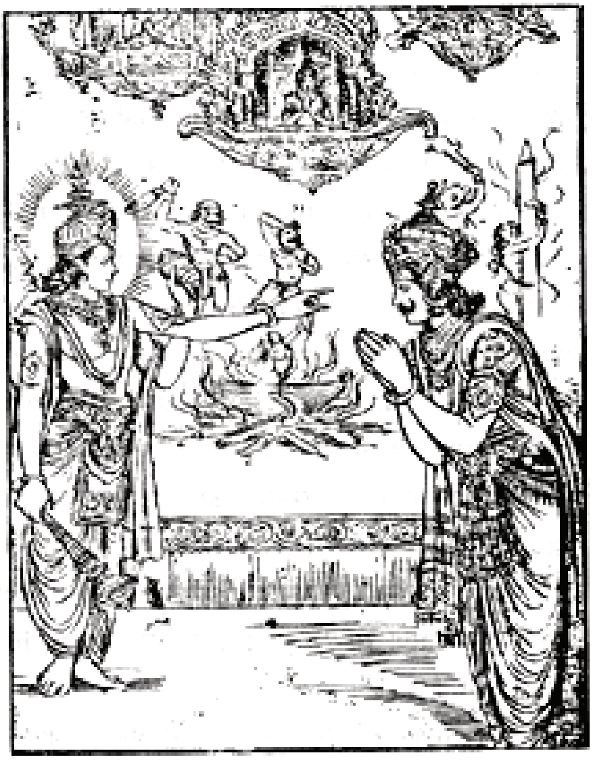

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर यमने मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और मन-ही-मन कुछ सोचा। तत्पश्चात् मदोन्मत्त नारकी जीवोंको नरकसे मुक्त देखकर उनके साथ ही वे भगवान् विष्णुके वास-स्थानको चले। यमराज श्रेष्ठ विमानके द्वारा जहाँ क्षीरसागर है, वहाँ जा पहुँचे। उसके भीतर कोटि-कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर लोकनाथ जगद्गुरु श्रीहरिका उन्होंने दर्शन किया। भगवान्का तेज उनकी शय्या बने हुए शेषनागके फनोंकी मणियोंके प्रकाशसे दुगुना हो रहा था। वे आनन्दयुक्त दिखायी दे रहे थे। उनका हृदय प्रसन्नतासे परिपूर्ण था। भगवती लक्ष्मी अपनी सरल चितवनसे प्रेमपूर्वक उन्हें बारम्बार निहार रही थीं। चारों ओर योगीजन भगवान्की सेवामें खड़े थे। उन योगियोंकी आँखोंके तारे ध्यानस्थ होनेके कारण निश्चल प्रतीत होते थे। देवराज इन्द्र अपने विरोधियोंको परास्त करनेके उद्देश्यसे भगवान्की स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए वेदान्त-वाक्य मूर्तिमान् होकर भगवान्के गुणोंका गान कर रहे थे। भगवान् पूर्णतः सन्तुष्ट होनेके साथ ही समस्त योनियोंकी ओरसे उदासीन प्रतीत होते थे। जीवोंमेंसे जिन्होंने योग-साधनके द्वारा अधिक पुण्य सञ्चय किया था, उन सबको एक ही साथ वे कृपा-दृष्टिसे निहार रहे थे। भगवान् अपने स्वरूपभूत अखिल चराचर जगत्को आनन्दपूर्ण दृष्टिसे आमोदित कर रहे थे। शेषनागकी प्रभासे उद्भासित एवं सर्वत्र व्यापक दिव्य विग्रह धारण किये नील कमलके सदृश श्याम-वर्णवाले श्रीहरि ऐसे जान पड़ते थे, मानो चाँदनीसे घिरा हुआ आकाश सुशोभित हो रहा हो। इस प्रकार भगवान्की झाँकी करके यमराज अपनी विशाल बुद्धिके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वर! आपका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है। आपके मुखसे ही वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है। आप ही विश्वस्वरूप और इसके विधायक ब्रह्मा हैं। आपको नमस्कार है। अपने बल और वेगके कारण जो अत्यन्त दुर्धर्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे दानवेन्द्रोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। पालनके समय सत्त्वमय शरीर धारण करनेवाले, विश्वके आधारभूत, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार है। समस्त देहधारियोंकी पातक-राशिको दूर करनेवाले परमात्माको प्रणाम है। जिनके ललाटवर्ती नेत्रके तनिक-सा खुलनेपर भी आगकी लपटें निकलने लगती हैं, उन रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्वके गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं; अतः समस्त वैष्णवजनोंको सङ्कटसे मुक्त करके उनपर अनुग्रह करते हैं। आप मायासे विस्तारको प्राप्त हुए अखिल विश्वमें व्याप्त होकर भी कभी माया अथवा उससे उत्पन्न होनेवाले गुणोंसे मोहित नहीं होते। माया तथा मायाजनित गुणोंके बीचमें स्थित होनेपर भी आपपर उनमेंसे किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। आपकी महिमाका अन्त नहीं है; क्योंकि आप असीम हैं। फिर आप वाणीके विषय कैसे हो सकते हैं। अतः मेरा मौन रहना ही उचित है।

इस प्रकार स्तुति करके यमराजने हाथ जोड़कर कहा—'जगद्गुरो! आपके आदेशसे इन जीवोंको गुणरहित होनेपर भी मैंने छोड़ दिया है। अब मेरे योग्य और जो कार्य हो, उसे बताइये।' उनके यों कहनेपर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा मानो अमृत-रससे सींचते हुए बोले—'धर्मराज! तुम सबके प्रति समान भाव रखते हुए लोकोंका पापसे उद्धार कर रहे हो। तुमपर देहधारियोंका भार रखकर मैं निश्चिन्त हूँ। अतः तुम अपना काम करो और अपने लोकको लौट जाओ।'

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। यमराज भी अपनी पुरीको लौट आये। तथा वह ब्राह्मण अपनी जातिके और समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार करके स्वयं भी श्रेष्ठ विमानद्वारा श्रीविष्णुधामको चला गया।

★

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! अब मैं चौथे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। भागीरथीके तटपर वाराणसी (बनारस) नामकी एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजीके मन्दिरमें भरत नामके एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तनमें तत्पर हो आदरपूर्वक गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ किया करते थे। उसके अभ्याससे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे कभी व्यथित नहीं होते थे। एक समयकी बात है, वे तपोधन नगरकी सीमामें स्थित देवताओंका दर्शन करनेकी इच्छासे भ्रमण करते हुए नगरसे बाहर निकल गये। वहाँ बेरके दो वृक्ष थे। उन्हींकी जड़में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्षकी जड़में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्षके मूलमें उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये, तब बेरके वे दोनों वृक्ष पाँच-ही-छः दिनोंके भीतर सूख गये। उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मणोंके पवित्र गृहमें दो कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्षकी हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशोंसे घूमकर आते हुए भरतमुनिको देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणोंमें पड़ गयीं और मीठी वाणीमें बोलीं—'मुने! आपकी ही कृपासे हम दोनोंका उद्धार हुआ है। हमने बेरकी योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।' उनके इस प्रकार कहनेपर मुनिको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'पुत्रियो! मैंने कब और किस साधनसे तुम्हें मुक्त किया था? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेरके वृक्ष होनेमें क्या कारण था? क्योंकि इस विषयमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।'

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जानेका कारण बतलाती हुई बोलीं—''मुने! गोदावरी नदीके तटपर छिन्नपाप नामका एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनताकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थमें सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्म ऋतुमें प्रज्वलित अग्नियोंके बीचमें बैठते थे, वर्षाकालमें जलकी धाराओंसे उनके मस्तकके बाल सदा भीगे ही रहते थे तथा जाड़ेके समय जलमें निवास करनेके कारण उनके शरीरमें हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतरसे सदा शुद्ध रहते, समयपर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मामें ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ताके द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुननेके लिये साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजीके साथ उनका संकोच नहीं रह गया था; अतः उनके आनेपर भी वे सदा तपस्यामें मग्न रहते थे। परमात्माके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपाको जीवन्मुक्तके समान मानकर इन्द्रको अपने समृद्धिशाली पदके सम्बन्धमें कुछ भय हुआ। तब उन्होंने उनकी तपस्यामें सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओंके समुदायसे हम दोनोंको बुलाकर इन्द्रने इस प्रकार आदेश दिया—'तुम दोनों उस तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपदसे हटाकर स्वयं स्वर्गका राज्य भोगना चाहता है।'

''इन्द्रका यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामनेसे चलकर गोदावरीके तीरपर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द एवं गम्भीर स्वरसे बजते हुए मृदङ्ग तथा मधुर वेणुनादके साथ हम दोनोंने अन्य अप्सराओंसहित मधुर स्वरमें गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, उन योगी महात्माको वशमें करनेके लिये हमलोग स्वर, ताल और लयके साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीचमें जरा-जरा-सा अंचल खिसकनेपर उन्हें हमारी छाती भी दीख जाती थी। हम दोनोंकी उन्मत्त गति कामभावका उद्दीपन करनेवाली थी; किन्तु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्माके मनमें क्रोधका सञ्चार कर दिया। तब उन्होंने हाथसे जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया—'अरी! तुम दोनों गङ्गाजीके तटपर बेरके वृक्ष हो जाओ।' यह सुनकर हमलोगोंने बड़ी विनयके साथ कहा—'महात्मन्! हम दोनों पराधीन थीं; अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।' यों कहकर हमने मुनिको प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनिने हमारे शापोद्धारकी अवधि निश्चित करते हुए कहा—'भरत मुनिके आनेतक ही तुमपर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुमलोगोंका मर्त्यलोकमें जन्म होगा और पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी।'

''मुने! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्षके रूपमें खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीताके चौथे अध्यायका जप करते हुए हमारा उद्धार किया था; अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने केवल शापसे ही नहीं, इस भयानक संसारसे भी गीताके चतुर्थ अध्यायके पाठद्वारा हमें मुक्त कर दिया।''

श्रीभगवान् कहते हैं—उन दोनोंके इस प्रकार कहनेपर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदरके साथ प्रतिदिन गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया।

★

श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—देवि! अब सब लोगोंद्वारा सम्मानित पाँचवें अध्यायका माहात्म्य संक्षेपसे बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। मद्रदेशमें पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है। उसमें पिङ्गल नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदपाठी ब्राह्मणोंके विख्यात वंशमें, जो सर्वथा निष्कलङ्क था, उत्पन्न हुआ था; किन्तु अपने कुलके लिये उचित वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायको छोड़कर ढोल आदि बजाते हुए उसने नाच-गानमें मन लगाया। गीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलामें परिश्रम करके पिङ्गलने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उसीसे उसका राजभवनमें भी प्रवेश हो गया। अब वह राजाके साथ रहने लगा और परायी स्त्रियोंको बुला-बुलाकर उनका उपभोग करने लगा। स्त्रियोंके सिवा और कहीं इसका मन नहीं लगता था। धीरे-धीरे अभिमान बढ़ जानेसे उच्छृङ्खल होकर वह एकान्तमें राजासे दूसरोंके दोष बतलाने लगा। पिङ्गलकी एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा। वह नीच कुलमें उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषोंके साथ विहार करनेकी इच्छासे सदा उन्हींकी खोजमें घूमा करती थी। उसने पतिको अपने मार्गका कण्टक समझकर एक दिन आधी रातमें घरके भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाशको जमीनमें गाड़ दिया। इस प्रकार प्राणोंसे वियुक्त होनेपर वह यमलोकमें पहुँचा और भीषण नरकोंका उपभोग करके निर्जन वनमें गिद्ध हुआ।

अरुणा भी भगन्दर रोगसे अपने सुन्दर शरीरको त्याग कर घोर नरक भोगनेके पश्चात् उसी वनमें शुकी हुई। एक दिन वह दाना चुगनेकी इच्छासे इधर-उधर फुदक रही थी, इतनेमें ही उस गिद्धने पूर्वजन्मके वैरका स्मरण करके उसे अपने तीखे नखोंसे फाड़ डाला। शुकी घायल होकर पानीसे भरी हुई मनुष्यकी खोपड़ीमें गिरी। गिद्ध पुनः उसकी ओर झपटा। इतनेमें ही जाल फैलानेवाले बहेलियोंने उसे भी बाणोंका निशाना बनाया। उसकी पूर्वजन्मकी पत्नी शुकी उस खोपड़ीके जलमें डूबकर प्राण त्याग चुकी थी। फिर वह क्रूर पक्षी भी उसीमें गिरकर डूब गया। तब यमराजके दूत उन दोनोंको यमराजके लोकमें ले गये। वहाँ अपने पूर्वकृत पाप-कर्मको याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे। तदनन्तर यमराजने जब उनके घृणित कर्मोंपर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्युके समय अकस्मात् खोपड़ीके जलमें स्नान करनेसे इन दोनोंका पाप नष्ट हो चुका है। तब उन्होंने उन दोनोंको मनोवाञ्छित लोकमें जानेकी आज्ञा दी। यह सुनकर अपने पापको याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मयमें पड़े और पास जाकर धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम करके पूछने लगे—'भगवन्! हम दोनोंने पूर्वजन्ममें अत्यन्त घृणित पापका सञ्चय किया है। फिर हमें मनोवाञ्छित लोकोंमें भेजनेका क्या कारण है? बताइये।'

यमराजने कहा—गङ्गाके किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे। वे एकान्तसेवी, ममतारहित, शान्त, विरक्त और किसीसे भी द्वेष न रखनेवाले थे।

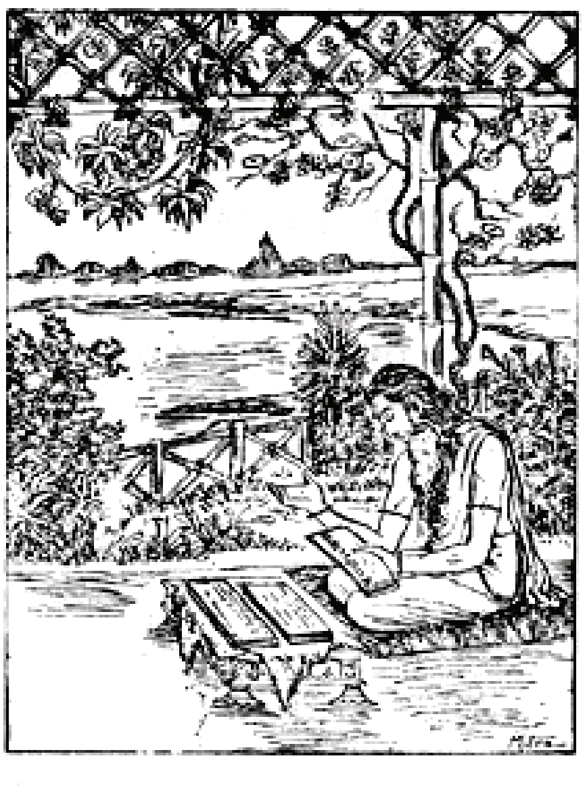

प्रतिदिन गीताके पाँचवें अध्यायका जप करना उनका सदाका नियम था। पाँचवें अध्यायको श्रवण कर लेनेपर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी पुण्यके प्रभावसे शुद्धचित्त होकर उन्होंने अपने शरीरका परित्याग किया था। गीताके पाठसे जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्हीं महात्माकी खोपड़ीका जल पाकर तुम दोनों पवित्र हो गये हो। अतः अब तुम दोनों मनोवाञ्छित लोकोंको जाओ; क्योंकि गीताके पाँचवें अध्यायके माहात्म्यसे तुम दोनों शुद्ध हो गये हो।

श्रीभगवान् कहते हैं—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले धर्मराजके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर ये दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमानपर बैठकर वैकुण्ठ-धामको चले गये।

★

श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—सुमुखि! अब मैं छठे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुननेवाले मनुष्योंके लिये मुक्ति करतलगत हो जाती है। गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्पलेशके नामसे विख्यात होकर रहता हूँ। उस नगरमें जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमण्डलकी प्रजाको अत्यन्त प्रिय थे। उनका प्रताप मार्तण्ड-मण्डलके प्रचण्ड तेजके समान जान पड़ता था। प्रतिदिन होनेवाले उनके यज्ञके धुएँसे नन्दनवनके कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे, मानो राजाकी असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों। उनके यज्ञमें प्राप्त पुरोडाशके रसास्वादनमें सदा आसक्त होनेके कारण देवतालोग कभी प्रतिष्ठानपुरको छोड़कर बाहर नहीं जाते थे। उनके दानके समय छोड़े हुए जलकी धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञके धूमोंसे पुष्ट होकर मेघ ठीक समयपर वर्षा करते थे। उस राजाके शासनकालमें ईतियों (खेतीमें होनेवाले छः प्रकारके उपद्रवों) के लिये कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियोंका सर्वत्र प्रसार होता था। वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवानेके बहाने मानो प्रतिदिन पृथ्वीके भीतरकी निधियोंका अवलोकन करते थे। एक समय राजाके दान, तप, यज्ञ और प्रजापालनसे सन्तुष्ट होकर स्वर्गके देवता उन्हें वर देनेके लिये आये। वे कमलनालके समान उज्ज्वल हंसोंका रूप धारण कर अपनी पाँखें हिलाते हुए आकाशमार्गसे चलने लगे। बड़ी उतावलीके साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे। उनमेंसे भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेगसे उड़कर आगे निकल गये। तब पीछेवाले हंसोंने आगे जानेवालोंको संबोधित करके कहा—'अरे भाई भद्राश्व! तुमलोग वेगसे चलकर आगे क्यों हो गये? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है; इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिये। क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुतिका तेजःपुंज अत्यन्त स्पष्ट रूपसे प्रकाशमान हो रहा है। [उस तेजसे भस्म होनेकी आशङ्का है, अतः सावधान होकर चलना चाहिये।]'

पीछेवाले हंसोंके वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े और उच्चस्वरसे उनकी बातोंकी अवहेलना करते हुए बोले—'अरे भाई! क्या इस राजा जानश्रुतिका तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैक्वके तेजसे भी अधिक तीव्र है?'

हंसोंकी ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महलकी छतसे उतर गये और सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो अपने सारथिको बुलाकर बोले—'जाओ, महात्मा रैक्वको यहाँ ले आओ।' राजाका यह अमृतके समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगरसे बाहर निकला। सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरीकी यात्रा की, जहाँ जगत्के स्वामी भगवान् विश्वनाथ मनुष्योंको उपदेश दिया करते हैं। उसके बाद वह गयाक्षेत्रमें पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान् गदाधर सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेके लिये